



धार्मिक प्रतीकों और राष्ट्रवादी विचारधारा के समन्वय का क्रांतिकारी आंदोलनों पर प्रभाव

Triloki nath Singh yadav,

Veer Bahadur Singh Purvanchal University Jaunpur Uttar Pradesh

शोध का सार

यह शोध पत्र “धार्मिक प्रतीकों और राष्ट्रवादी विचारधारा के समन्वय का क्रांतिकारी आंदोलनों पर प्रभाव” विषय पर एक ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इसमें यह दर्शाया गया है कि औपनिवेशिक भारत में धार्मिक प्रतीकों ने राष्ट्रवादी भावना को उजागर करने, जन संगठनों को सुदृढ़ बनाने और स्वतंत्रता आंदोलनों को सांस्कृतिक आधार प्रदान करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जैसे कि भारत माता, वंदे मातरम्, गणेशोत्सव, रामराज्य और विभिन्न धार्मिक अनुष्ठान, इन प्रतीकों ने लोगों में आत्मगौरव, बलिदान और राष्ट्रीय एकता की भावना को प्रोत्साहित किया। अध्ययन में यह भी स्पष्ट किया गया है कि धार्मिक राष्ट्रवाद ने क्रांतिकारी आंदोलनों को एक विशेष वैचारिक ऊर्जा के जरिए बढ़ावा दिया, लेकिन इसके राजनीतिक इस्तेमाल ने साम्प्रदायिकता, कट्टरपंथ और सामाजिक ध्रुवीकरण जैसी समस्याएं भी खड़ी की हैं। समकालीन भारत में, धार्मिक प्रतीकों का राजनीतिकरण लोकतंत्र, सांस्कृतिक पहचान और राष्ट्रवाद की नई परिभाषाओं पर गहरा असर डाल रहा है।

की वर्ड: धार्मिक प्रतीक, राष्ट्रवाद, क्रांतिकारी आंदोलन, धार्मिक राष्ट्रवाद, भारत माता, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, जनसंगठन, साम्प्रदायिकता, औपनिवेशिक भारत और समकालीन राजनीति।

परिचय

राष्ट्रवाद आज के समय में सबसे प्रभावशाली राजनीतिक सिद्धांतों में से एक माना जाता है। भारत समेत विभिन्न देशों में राष्ट्रवादी आंदोलनों ने जनसामान्य को एकजुट करने के लिए धार्मिक प्रतीकों, मिथकों और सांस्कृतिक स्मृतियों का सहारा लिया है। धार्मिक प्रतीक जनमानस की भावनाओं पर गहरा प्रभाव डालते हैं, यही कारण है कि राजनीति में उनका उपयोग सामूहिक संरक्षण का एक प्रभावी साधन बन गया है। औपनिवेशिक भारत के दौरान “भारत माता”, “वंदे मातरम्”, रामराज्य, गंगा और गाय जैसे प्रतीकों का राष्ट्रवादी चर्चाओं में महत्वपूर्ण स्थान रहा। क्रांतिकारी आंदोलनों में धार्मिक प्रतीकों का उपयोग दो स्तरों पर स्पष्ट होता है- पहला, औपनिवेशिक शासन के खिलाफ सांस्कृतिक प्रतिरोध के रूप में; दूसरा, एक विशिष्ट धार्मिक पहचान के निर्माण के प्रयास के तौर पर। भगत सिंह, सुभाषचंद्र बोस और महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने राष्ट्रवाद को एक समावेशी दृष्टिकोण से देखा, जबकि सावरकर और हिंदू महासभा जैसे समूहों ने धर्म को राष्ट्रवाद की नींव के रूप में स्थापित करने की कोशिश की।

राम पुनियानी के अनुसार, आज के भारत में धार्मिक राष्ट्रवाद ऐतिहासिक प्रतीकों को नए संदर्भ में देखने की कोशिश कर रहा है, जिससे राष्ट्रवादी विचारधारा को सांप्रदायिक आधार मिल सके।¹ वहीं, मनोज कुमार चायल का कहना है कि धार्मिक सुधार आंदोलनों ने भारतीय राष्ट्रवाद की सोच की गहरी नींव रखी, लेकिन बाद में यही तत्व सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और पहचान की राजनीति के लिए आधार बन गए।²

धार्मिक प्रतीकों की अवधारणा और राष्ट्रवाद

राष्ट्रवाद की धारणा केवल राजनीतिक सीमाओं या प्रशासनिक ढांचों तक सीमित नहीं है; यह सांस्कृतिक, धार्मिक और ऐतिहासिक तत्वों से भी गहराई से जुड़ी होती है। धार्मिक प्रतीक किसी समाज की सामूहिक चेतना, आस्था और सांस्कृतिक पहचान का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब ये प्रतीक राष्ट्रवादी विचारों से संबंधित होते हैं, तो वे समाज में एकता, गौरव और सामूहिक संघर्ष की भावना को जन्म देते हैं। भारत जैसे बहुधार्मिक और बहुसांस्कृतिक देश में धार्मिक प्रतीकों ने राष्ट्रवाद के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।³

धार्मिक प्रतीकों का राष्ट्रवादी आंदोलनों में उपयोग इस कारण से प्रभावी माना गया क्योंकि वे आम जन से सीधे जुड़े होते हैं। औपनिवेशिक भारत में, अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष के समय भारतीय नेताओं और समाज सुधारकों ने इन प्रतीकों को राष्ट्रीय पहचान के निर्माण के लिए अपनाया। उदाहरण के तौर पर, "भारत माता" के विचार ने देश को एक पवित्र माँ के रूप में प्रस्तुत किया, जिससे जनता में देशभक्ति और बलिदान की भावना को प्रोत्साहन मिला।⁴ इसी प्रकार, "वंदे मातरम्" गीत ने धार्मिक और सांस्कृतिक भावनाओं को स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़कर इसे एक व्यापक जनांदोलन का रूप दिया।⁵ उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में विभिन्न धार्मिक उत्सवों को राष्ट्रीय चेतना के विस्तार के साधन के रूप में उपयोग किया गया। बाल गंगाधर तिलक ने गणेशोत्सव और शिवाजी उत्सव को सार्वजनिक स्तर पर आयोजित करके भारतीय समाज को एकजुट करने की कोशिश की। इन आयोजनों ने धार्मिक विश्वासों को राजनीतिक जागरूकता से जोड़ा, जिससे अंग्रेजी शासन के खिलाफ सामूहिक प्रतिरोध की भावना का विकास हुआ। धार्मिक प्रतीकों ने जनता को यह समझने में मदद की कि स्वतंत्रता केवल राजनीतिक अधिकारों का मामला नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक पहचान की रक्षा का भी मुद्दा है।

धार्मिक प्रतीकों का राष्ट्रवाद में उपयोग कई नकारात्मक प्रभाव भी उत्पन्न कर सकता है। कई विद्वानों का मानना है कि जब राष्ट्रवाद एक खास धार्मिक पहचान पर अधिक जोर देने लगता है, तो यह साम्प्रदायिक विभाजन को जन्म दे सकता है। औपनिवेशिक युग में हिंदू और मुस्लिम धार्मिक प्रतीकों का अलग-अलग राजनीतिक इस्तेमाल ने सामाजिक तनाव को बढ़ावा दिया, जिसका परिणाम बाद में भारत के विभाजन के रूप में सामने आया। इसलिए, धार्मिक प्रतीकों और राष्ट्रवाद के बीच के संबंध को समझने के लिए एकीकरण और विभाजन- दोनों पहलुओं का गहन अध्ययन जरूरी है। धार्मिक प्रतीक राष्ट्रवाद के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये प्रतीक जनता में सांस्कृतिक गर्व, राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता की भावना को मजबूती देते हैं।

औपनिवेशिक भारत में धार्मिक प्रतीकों का उदय

औपनिवेशिक भारत में धार्मिक प्रतीकों का विकास केवल आध्यात्मिक जागरूकता का फल नहीं था, बल्कि यह राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतिरोध का भी एक महत्वपूर्ण साधन बन गया। जब उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश शासन का विस्तार हुआ, तब भारतीय समाज में अपनी सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखने की भावना और अधिक प्रबल हो गई। इस परिप्रेक्ष्य में, धार्मिक प्रतीकों, देवी-देवताओं, तीर्थस्थलों और धार्मिक अनुष्ठानों को राष्ट्रवादी

¹ राम-पुनियानी, (2019, 7 सितंबर), धार्मिक राष्ट्रवाद के प्रतीक और विचारधारा।

² चायल, म. क. (2025). धार्मिक सुधार और राष्ट्रवाद का अंतरसंबंध: औपनिवेशिक भारत से समकालीन विमर्श तक. जर्नल ऑफ इमर्जिंग टेक्नोलॉजीज़ एंड इनोवेटिव रिसर्च (JETIR), 12(1), h600.

³ बेनेडिक्ट एंडरसन, इमेजिन्ड कम्युनिटीज: रिप्लेक्स ऑन द ओरिजिन एंड स्प्रेड ऑफ नेशनलिज्म (लंदन: वर्सो, 1983), 15.

⁴ बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय, आनंदमठ (कोलकाता: बंगदर्शन प्रेस, 1882), 42।

⁵ सुमित सरकार, आधुनिक भारत 1885-1947 (दिल्ली: मैकमिलन, 1983), 97.

चेतना से जोड़कर देखा जाने लगा।⁶ ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों ने भारतीय परंपराओं और धार्मिक मान्यताओं को “पिछड़ा” साबित करने की कोशिश की, जिसके चलते भारतीय समाज में सांस्कृतिक पुनर्जागरण की एक नई लहर आई। इस पुनर्जागरण ने धार्मिक प्रतीकों को राजनीतिक अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण साधन बना दिया।⁷ उदाहरण के तौर पर, बंगाल में “भारत माता” की धारणा ने राष्ट्र को एक पवित्र देवी के रूप में प्रस्तुत किया, जिससे स्वतंत्रता आंदोलन को भावनात्मक मजबूती मिली।⁸ इसी तरह, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने गणेशोत्सव को सार्वजनिक रूप देकर इसे जन जागरूकता और राजनीतिक संगठन के एक महत्वपूर्ण साधन में बदल दिया।⁹ धार्मिक प्रतीकों का उपयोग केवल हिंदू समुदाय तक ही सीमित नहीं था। मुस्लिम समाज में खिलाफत आंदोलन के दौरान इस्लामी प्रतीकों और धार्मिक एकता को उपनिवेशी प्रतिरोध के साथ जोड़ा गया।¹⁰ इस प्रकार, धर्म और राजनीति के बीच एक नया संबंध स्थापित हुआ, जिसने राष्ट्रीय आंदोलन को अधिक व्यापक जनसमर्थन प्राप्त करने में मदद की।

धार्मिक प्रतीकों के राजनीतिक इस्तेमाल के कुछ नकारात्मक परिणाम भी देखने को मिले। जहां ये प्रतीक लोगों को औपनिवेशिक शासन के खिलाफ एकजुट कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर इन्होंने साम्प्रदायिक पहचान को भी और मजबूत किया।¹¹ इसके फलस्वरूप, बीसवीं शताब्दी के शुरुआती दिनों में धार्मिक आधार पर राजनीतिक ध्रुवीकरण की प्रक्रिया तेज हो गई। इस प्रकार, औपनिवेशिक भारत में धार्मिक प्रतीकों का उदय राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक पुनर्जागरण और साम्प्रदायिक राजनीति—तीनों के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला सिद्ध हुआ।

क्रांतिकारी आंदोलनों में धार्मिक राष्ट्रवाद

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम हिस्से और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में क्रांतिकारी संघर्ष का उदय सिर्फ राजनीतिक असंतोष का नतीजा नहीं था, बल्कि इसके पीछे धार्मिक राष्ट्रवाद की एक गहन वैचारिक प्रेरणा भी मौजूद थी। धार्मिक राष्ट्रवाद ने भारतीय क्रांतिकारियों को सांस्कृतिक गर्व, आत्मविश्वास और राष्ट्रीय एकता का आधार उपलब्ध कराया। औपनिवेशिक शासन के खिलाफ लड़ाई में बहुत से क्रांतिकारी नेताओं ने भारतीय धर्म, परंपरा और आध्यात्मिक प्रतीकों को राष्ट्रीय चेतना के साथ जोड़कर देखा। इस प्रकार, धर्म अब केवल व्यक्तिगत आस्था का विषय नहीं रह गया, बल्कि यह राजनीतिक विरोध और राष्ट्रीय मुक्ति का एक मजबूत साधन बन गया।¹²

भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन में धार्मिक राष्ट्रवाद की महत्वपूर्ण झलक बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के “वन्दे मातरम्” गीत में मिलती है। इस गीत में भारतमाता को एक देवी के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसने युवाओं में मातृभूमि के प्रति बलिदान की भावना को गहरा किया।¹³ बंगाल के अनुशीलन समिति और युगांतर समूह जैसे क्रांतिकारी संगठनों ने भगवद्गीता, शक्ति-पूजा और हिंदू प्रतीकों का भरपूर इस्तेमाल किया। उनके लिए धर्म का अर्थ केवल सांप्रदायिकता नहीं था, बल्कि यह आत्मबल और नैतिक प्रेरणा से जुड़ा हुआ था। श्री अरविन्द घोष ने गीता की व्याख्या करते हुए कर्मयोग को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ा और कहा कि राष्ट्र की स्वतंत्रता एक पवित्र धर्मयुद्ध के समान है। धार्मिक राष्ट्रवाद का प्रभाव केवल बंगाल तक सीमित नहीं था, बल्कि यह महाराष्ट्र में भी गहराई तक फैला हुआ था। यहां, बाल गंगाधर तिलक ने गणपति उत्सव और शिवाजी उत्सव को सार्वजनिक रूप से मनाकर राष्ट्रीय चेतना के प्रसार का एक प्रभावी माध्यम स्थापित किया। इन उत्सवों ने लोगों को एकत्रित करने और ब्रिटिश शासन के खिलाफ राजनीतिक जागरूकता बढ़ाने में

⁶ बिपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष (नई दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, 2009), पृ. 112।

⁷ सुमित सरकार, आधुनिक भारत (दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2012), पृ. 156।

⁸ बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, आनंदमठ (कोलकाता: साहित्य प्रकाशन, 1882), पृ. 45।

⁹ स्टेनली वोल्पर्ट, तिलक एंड गोखले (नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1962), पृ. 98।

¹⁰ गेल मिर्नॉल्ट, द खिलाफत मूवमेंट: भारत में धार्मिक प्रतीकवाद और राजनीतिक लामबंदी (न्यूयॉर्क: कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 1982), पृ. 67।

¹¹ रामचन्द्र गुहा, इंडिया आफ्टर गांधी (नई दिल्ली: पिकाडोर इंडिया, 2007), पृ. 34।

¹² बिपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष (नई दिल्ली) पृष्ठ 95.

¹³ बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय, आनंदमठ, पृष्ठ 112.

महत्वपूर्ण योगदान दिया।¹⁴ तिलक ने अपनी पुस्तक 'गीता रहस्य' में निष्काम कर्म और संघर्ष के सिद्धांत को समझाते हुए युवाओं को अन्याय के खिलाफ सक्रिय रूप से खड़े होने के लिए प्रेरित किया। इसी तरह, विनायक दामोदर सावरकर ने 1857 के विद्रोह को "भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम" के रूप में संदर्भित करके इसे राष्ट्रीय और सांस्कृतिक गौरव से जोड़ा।¹⁵ क्रांतिकारी संगठनों के शपथ ग्रहण समारोहों में धार्मिक प्रतीकों की भूमिका महत्वपूर्ण थी। कई स्थलों पर क्रांतिकारी गीता या देवी के समक्ष प्रतिज्ञा करते थे कि वे मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए अपना जीवन न्यौछावर करेंगे।¹⁶ इससे आंदोलन में नैतिक मजबूती और भावनात्मक एकता पैदा होती थी। धार्मिक राष्ट्रवाद ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष को केवल राजनीतिक अधिकारों की लड़ाई तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसे सांस्कृतिक पुनर्जागरण का रूप भी दिया।

धार्मिक राष्ट्रवाद की इस परंपरा ने बाद में कुछ आलोचनाओं को भी जन्म दिया। कई इतिहासकारों का कहना है कि धार्मिक प्रतीकों के अधिक इस्तेमाल से आंदोलन में सांप्रदायिक विभाजन का खतरा बढ़ गया।¹⁷ फिर भी, यह ध्यान देने योग्य है कि प्रारंभिक क्रांतिकारी आंदोलनों में धर्म का उपयोग मुख्य रूप से राष्ट्रीय एकता, आत्म-सम्मान और बलिदान की भावना को बढ़ावा देने के लिए किया गया था। इस प्रकार, धार्मिक राष्ट्रवाद भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन की वैचारिक ऊर्जा के रूप में उभरा, जिसने स्वतंत्रता संग्राम को सांस्कृतिक और आध्यात्मिक रूप दिया।

धार्मिक प्रतीकों द्वारा जनसंगठन

"धार्मिक प्रतीकों से जनसंगठन" भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन की एक प्रभावशाली रणनीति थी, जिसके जरिए स्वतंत्रता सेनानियों ने लोगों को राजनीतिक जागरूकता से जोड़ने का प्रयास किया। औपनिवेशिक युग में भारत की अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित थी और उन्हें आधुनिक राजनीतिक अवधारणाओं की विशेष जानकारी नहीं थी। ऐसे में, धार्मिक प्रतीकों, देवी-देवताओं, त्योहारों और सांस्कृतिक परंपराओं का इस्तेमाल कर लोगों को एकजुट किया गया। चूंकि धर्म भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था, इसलिए धार्मिक प्रतीकों के जरिए लोगों की भावनाओं को आसानी से जागृत किया जा सकता था।¹⁸ गणेशोत्सव और शिवाजी महोत्सव जैसे धार्मिक आयोजनों को राजनीतिक जनसंगठन के रूप में स्थापित करने का कार्य बाल गंगाधर तिलक ने उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में किया। उन्होंने इन उत्सवों को जनता के लिए खोला, जिससे राष्ट्रीय चेतना को बढ़ावा मिला। पहले गणपति पूजा केवल व्यक्तिगत स्तर पर होती थी, लेकिन तिलक ने इसे सामूहिक रूप में आयोजित करके ब्रिटिश शासन के खिलाफ जनमत बनाने का प्रयास किया। इन आयोजनों में भाषण, नाटक, कीर्तन और देशभक्ति गीतों का आयोजन कर जनता को स्वराज्य की ओर प्रेरित किया जाता था।¹⁹

बंगाल के विभाजन (1905) के दौरान धार्मिक और सांस्कृतिक प्रतीकों का व्यापक रूप से उपयोग किया गया। "वंदे मातरम्" सिर्फ एक गीत नहीं रहा, बल्कि यह राष्ट्रीयता का प्रतीक बन गया। आनंदमठ में वर्णित भारत माता की अवधारणा ने भारतीयों के दिलों में मातृभूमि के प्रति गहरा संबंध स्थापित किया। भारत माता को देवी के रूप में प्रस्तुत करने से राष्ट्रवाद को एक धार्मिक आधार मिला, जिससे जनता में आत्मबल और एकता की भावना जागृत हुई।²⁰ महात्मा गांधी ने धार्मिक प्रतीकों का बहुत प्रभावी ढंग से प्रयोग किया। उन्होंने रामराज्य, सत्य, अहिंसा और प्रार्थना सभाओं को जनआंदोलनों से जोड़ा। उनके लिए धर्म का मतलब किसी एक विशेष संप्रदाय से नहीं, बल्कि नैतिकता और सत्य पर आधारित सामाजिक एकता था। गांधीजी के आंदोलनों में भजन, चरखा और खादी जैसे प्रतीक आम लोगों के लिए प्रेरणा

¹⁴ स्टेनली वोल्फर्ट, तिलक एंड गोखले: आधुनिक भारत के निर्माण में क्रांति और सुधार, पृष्ठ 143.

¹⁵ वी.डी. सावरकर, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम 1857 (बॉम्बे: वीर सावरकर प्रकाशन, 1947), पृष्ठ 21।

¹⁶ सुमित सरकार, आधुनिक भारत 1885-1947, पृष्ठ 178.

¹⁷ शेखर बंद्योपाध्याय, प्लासी से विभाजन और उसके बाद: आधुनिक भारत का इतिहास (नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2004), पृष्ठ 248।

¹⁸ बिपिन चंद्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष (नई दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, 2009),

¹⁹ सुमित सरकार, आधुनिक भारत (नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2012), पृ. 156।

²⁰ बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय, आनंदमठ (कोलकाता: साहित्य प्रकाशन, 1882), पृ. 87।

के जलते स्रोत बने। इस तरह, ग्रामीण समुदाय भी स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रूप से शामिल हो सका।²¹ हालांकि धार्मिक प्रतीकों का उपयोग कुछ नकारात्मक परिणाम भी लाता है, जैसे कि साम्प्रदायिक विभाजन की प्रवृत्तियाँ। विभिन्न समुदाय अपने-अपने धार्मिक प्रतीकों के आधार पर एकजुट होने लगे। फिर भी यह सत्य है कि औपनिवेशिक काल में धार्मिक प्रतीकों ने भारतीय समाज में राजनीतिक जागरूकता के प्रसार और जन संगठनों को बढ़ावा देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन प्रतीकों ने राष्ट्रवाद का संदेश केवल शिक्षित वर्ग तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसे आम जनता तक पहुँचाने में भी मदद की।²²

धार्मिक राष्ट्रवाद और कट्टरवाद

धार्मिक राष्ट्रवाद आधुनिक राजनीति और समाज के अध्ययन में एक प्रमुख विषय है। यह एक ऐसी विचारधारा है, जिसमें किसी विशेष धर्म, संस्कृति या धार्मिक परंपरा के साथ राष्ट्र की पहचान को जोड़ दिया जाता है। जब धर्म और राष्ट्रवाद का मिलन बेहद उग्र रूप धारण करता है, तो यह कट्टरवाद को जन्म दे सकता है। धार्मिक कट्टरवाद उस स्थिति को संदर्भित करता है, जिसमें व्यक्ति या समूह अपने धार्मिक विश्वासों को सर्वोच्च मानते हुए अन्य विचारों, धर्मों और समुदायों के प्रति असहिष्णु हो जाते हैं। इसलिए, धार्मिक राष्ट्रवाद और कट्टरवाद के बीच एक अंतर्संबंध स्थापित माना जा सकता है।²³

औपनिवेशिक युग में धार्मिक राष्ट्रवाद का उभार मुख्य रूप से एशियाई और अफ्रीकी देशों में देखने को मिला। भारत में ब्रिटिश राज की "फूट डालो और राज करो" नीति ने धार्मिक पहचान को राजनीतिक स्वरूप दिया। हिन्दू और मुस्लिम समुदायों के लिए अलग-अलग राजनीतिक प्रतिनिधित्व और साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रक्रियाओं ने धार्मिक आधार पर राष्ट्रवाद को आगे बढ़ाया।²⁴ इस प्रक्रिया ने अंततः साम्प्रदायिक तनाव और विभाजनकारी राजनीति को जन्म दिया। भारत का विभाजन इस धार्मिक राष्ट्रवाद के सबसे गंभीर परिणामों में से एक माना जाता है। कट्टरवाद केवल राजनीतिक लड़ाई तक सीमित नहीं है; यह सामाजिक रिश्तों को भी प्रभावित करता है। धार्मिक कट्टरता के चलते समाज में असहिष्णुता, हिंसा, और सामाजिक विभाजन में वृद्धि होती है। इससे विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच अविश्वास के भाव पैदा होते हैं, जो राष्ट्रीय एकता को कमजोर करते हैं। आज के विश्व में, पश्चिम एशिया में उग्र इस्लामी समूहों का बढ़ना, अमेरिका और यूरोप में श्वेत ईसाई राष्ट्रवाद का उभार, और दक्षिण एशिया में सांप्रदायिक राजनीति इसके स्पष्ट उदाहरण हैं।²⁵

भारत, एक बहुधार्मिक और बहुसांस्कृतिक देश के रूप में, धार्मिक राष्ट्रवाद की राजनीति लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए एक गंभीर चुनौती बन गई है। भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता, समानता और सहिष्णुता के सिद्धांतों को प्रमुखता दी गई है, लेकिन धार्मिक कट्टरता इन मूल्यों को कमजोर करने की कोशिश कर रही है। सोशल मीडिया और अन्य डिजिटल प्लेटफार्मों के जरिए धार्मिक भावनाओं का राजनीतिक लाभ उठाने की प्रवृत्ति आज पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है, जिससे युवाओं के बीच वैचारिक ध्रुवीकरण में इजाफा हो रहा है।²⁶

समकालीन भारत और धार्मिक प्रतीकों की राजनीति

आधुनिक भारत में धार्मिक प्रतीकों की राजनीति ने लोकतंत्र, सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक चर्चाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज, धार्मिक प्रतीक सिर्फ आस्था का प्रतीक नहीं हैं; वे राजनीतिक ताकत, जनसमर्थन और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के साधन के रूप में भी इस्तेमाल किए जा रहे हैं। मंदिर, मस्जिद, धार्मिक ध्वज, देवी-देवताओं

²¹ महात्मा गांधी, हिंद स्वराज (अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन, 1938), पृ. 54।

²² ए. आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि (नई दिल्ली: मैकमिलन, 2005), पृ. 221।

²³ एंथोनी डी. स्मिथ, राष्ट्रवाद और आधुनिकतावाद: राष्ट्रों और राष्ट्रवाद के हालिया सिद्धांतों का एक आलोचनात्मक सर्वेक्षण। (लंदन: रूटलेज, 1998), पृष्ठ 187।

²⁴ बिपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृष्ठ 214.

²⁵ कैरेन आर्मस्ट्रांग, फील्ड्स ऑफ ब्लड: रिलीजन एंड द हिस्ट्री ऑफ वायलेंस (न्यूयॉर्क: अल्फ्रेड ए. नोपफ, 2014), पृ. 301.

²⁶ क्रिस्टोफ़ जैफ़्रेलॉट, मोदी का भारत: हिंदू राष्ट्रवाद और जातीय लोकतंत्र का उदय (प्रिंसटन: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 2021), पृष्ठ 95।

की छवियाँ, धार्मिक नारों और ऐतिहासिक व्यक्तित्वों के प्रतीकात्मक उपयोग ने भारतीय राजनीति को गहराई से प्रभावित किया है। भारत, एक बहुधार्मिक और बहुसांस्कृतिक देश, में धार्मिक प्रतीकों का उपयोग स्वतंत्रता आंदोलन के समय से ही देखा गया है। महात्मा गांधी ने "रामराज्य" की धारणा को नैतिक शासन के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया, जबकि अन्य राजनीतिक विचारधाराओं ने भी धार्मिक प्रतीकों के माध्यम से जनसमुदाय को एकजुट करने की कोशिश की। लेकिन इक्कीसवीं सदी में यह प्रवृत्ति कहीं अधिक संगठित और व्यापक रूप में उभरी है, जिसमें चुनावी राजनीति, जनभावनाओं के निर्माण और वैचारिक ध्रुवीकरण के लिए धार्मिक प्रतीकों का उपयोग किया जा रहा है।

समकालीन राजनीति में, अयोध्या का राम मंदिर आंदोलन धार्मिक प्रतीकों का उपयोग करने की राजनीति का एक प्रमुख उदाहरण है। "राम" अब केवल धार्मिक विश्वास का प्रतीक नहीं रह गया है; बल्कि इसे सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और राजनीतिक पहचान का महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में पेश किया गया है। इसी तरह, विभिन्न राज्यों में धार्मिक यात्राएँ, गौरक्षा, हिजाब विवाद, धार्मिक स्थलों के नाम परिवर्तन, और ऐतिहासिक स्मृतियों को पुनर्जीवित करने जैसे मुद्दे भी अब राजनीतिक चर्चाओं का अभिन्न हिस्सा बन चुके हैं।²⁷ धार्मिक प्रतीकों की राजनीति में मीडिया और सोशल मीडिया की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण है। डिजिटल प्लेटफार्मों ने धार्मिक भावनाओं को तेजी से फैलाने और जनमत बनाने में बड़ा योगदान दिया है। राजनीतिक दल और सामाजिक संगठन प्रतीकों, नारों एवं दृश्य प्रस्तुतियों के माध्यम से जनता की भावनाओं पर असर डालते हैं।²⁸ इससे एक ओर सांस्कृतिक चेतना और धार्मिक पहचान को मजबूती मिलती है, जबकि दूसरी ओर सांप्रदायिक तनाव और सामाजिक विभाजन की संभावनाएँ भी बढ़ जाती हैं।

समकालीन भारत में धार्मिक प्रतीकों की राजनीति का असर सिर्फ चुनावी मैदान तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह शिक्षा, इतिहास लेखन, सांस्कृतिक नीतियों और सार्वजनिक जीवन में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कई इतिहासकारों का मानना है कि इन धार्मिक प्रतीकों के माध्यम से अतीत की नई व्याख्या की जा रही है, जो राष्ट्रवाद की नई अवधारणाएँ विकसित कर रही हैं। इसके नतीजे के रूप में, बहुलतावादी भारतीय समाज में पहचान की राजनीति को एक नई ऊर्जा मिली है। धार्मिक प्रतीकों की राजनीति में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलू सामने आते हैं। सकारात्मक रूप से, ये सांस्कृतिक पहचान, परंपराओं और समुदायों को एकजुट करने का एक साधन बनते हैं। दूसरी ओर, नकारात्मक रूप से, ये सामाजिक ध्रुवीकरण, अल्पसंख्यक सुरक्षा के मुद्दों और लोकतांत्रिक सिद्धांतों के क्षय का कारण भी बन सकते हैं। इसलिए, यह महत्वपूर्ण है कि भारतीय लोकतंत्र धार्मिक प्रतीकों के उपयोग को समझते हुए धर्मनिरपेक्षता, संवैधानिक मूल्यों और सामाजिक समरसता के बीच संतुलन बनाए रखे और उनके विवेकपूर्ण मूल्यांकन पर ध्यान केंद्रित करे।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से यह पता चलता है कि धार्मिक प्रतीकों ने भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलनों को एक मजबूत भावनात्मक, सांस्कृतिक और वैचारिक आधार दिया। औपनिवेशिक काल में 'भारत माता', 'वंदे मातरम्', 'रामराज्य', 'गणेशोत्सव' और विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों जैसे प्रतीकों ने लोगों में राष्ट्रीय जागरूकता, आत्मसम्मान और स्वतंत्रता के प्रति समर्पण की भावना को बढ़ावा दिया। इन प्रतीकों ने राष्ट्रवाद को केवल एक राजनीतिक विचारधारा तक नहीं सीमित रखा, बल्कि इसे सांस्कृतिक पुनर्जागरण और जनआंदोलनों के रूप में विकसित किया।

क्रांतिकारी आंदोलनों में धार्मिक राष्ट्रवाद ने युवाओं को संघर्ष, बलिदान और समर्पण के लिए प्रेरित किया। इसने औपनिवेशिक शासन के खिलाफ एक व्यापक जनसंगठन के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाल गंगाधर तिलक, अरविंद घोष और महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने जनजागृति के लिए धार्मिक प्रतीकों का उपयोग किया। वहीं, कुछ संगठनों ने भी विशिष्ट धार्मिक पहचान को लेकर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया गया। अध्ययन यह भी दर्शाता है कि धार्मिक प्रतीकों का राजनीतिक रूप से बढ़ता प्रयोग सामाजिक ध्रुवीकरण और साम्प्रदायिक तनाव उत्पन्न कर सकता है। समकालीन भारत में धार्मिक प्रतीकों की राजनीति लोकतांत्रिक चर्चा, चुनावी रणनीतियों और राजनीतिक मुद्दों पर

²⁷ रामचन्द्र गुहा, इंडिया आफ्टर गांधी, पृष्ठ 633.

²⁸ नलिन मेहता, द न्यू बीजेपी (नोएडा: वेस्टलैंड, 2022), पृष्ठ 104.

गहरा प्रभाव डालती है। इसलिए यह जरूरी है कि धार्मिक प्रतीक राष्ट्रीय एकता, सामाजिक समरसता, और संवैधानिक मूल्यों के अनुसार हों, ताकि राष्ट्रवाद एक समावेशी और लोकतांत्रिक स्वरूप में बना रह सके।

संदर्भ सूची

1. राम-पुनियानी। (2019, 7 सितंबर)। *धार्मिक राष्ट्रवाद के प्रतीक और विचारधारा*। [Sabrang India](#)
2. चायल, म. क. (2025). धार्मिक सुधार और राष्ट्रवाद का अंतरसंबंध: औपनिवेशिक भारत से समकालीन विमर्श तक. *जर्नल ऑफ इमर्जिंग टेक्नोलॉजीज़ एंड इनोवेटिव रिसर्च (JETIR)*, 12(1), h600. <https://www.jetir.org>
3. नोर्रे, बी., और कोएलनर, टी. (2022). धर्म के संबंध में देशभक्ति, राष्ट्रवाद, अनुदारवाद: एक अंतर-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य। *धर्म*, 13 (9), 772. <https://doi.org/10.3390/rel13090772>
4. सोपर, जेसी, और फेट्ज़र, जेएस (2018)। धर्म और राष्ट्रवाद का एक सिद्धांत। *वैश्विक परिप्रेक्ष्य में धर्म और राष्ट्रवाद* (पृष्ठ 1-31)। अध्याय, कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. एंडरसन, बेनेडिक्ट। 2006. कल्पित समुदाय: राष्ट्रवाद की उत्पत्ति और प्रसार पर चिंतन । लंदन और न्यूयॉर्क: वर्सो बुक्स। पहली बार 1983 में प्रकाशित।
6. बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय, आनंदमठ (कोलकाता: बंगदर्शन प्रेस, 1882)।
7. सुमित सरकार, आधुनिक भारत 1885-1947 (दिल्ली: मैकमिलन, 1983)।
8. बिपिन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष (नई दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, 2009)।
9. स्टेनली वोल्फर्ट, तिलक एंड गोखले: आधुनिक भारत के निर्माण में क्रांति और सुधार (नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1962)।
10. क्रिस्टोफ़ जैफ़्रेलॉट, मोदी का भारत: हिंदू राष्ट्रवाद और जातीय लोकतंत्र का उदय (प्रिंसटन: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 2021)।
11. गेल मिनाल्ट, द खिलाफत मूवमेंट: भारत में धार्मिक प्रतीकवाद और राजनीतिक लामबंदी (न्यूयॉर्क: कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 1982)
12. रामचन्द्र गुहा, इंडिया आफ्टर गांधी (नई दिल्ली: पिकाडोर इंडिया, 2007)।
13. वी.डी. सावरकर, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम 1857 (बॉम्बे: वीर सावरकर प्रकाशन, 1947)।
14. शेखर बंद्योपाध्याय, प्लासी से विभाजन और उसके बाद: आधुनिक भारत का इतिहास (नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2004), पृष्ठ 248।
15. महात्मा गांधी, हिंद स्वराज (अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन, 1938)।
16. ए. आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि (नई दिल्ली: मैकमिलन, 2005)।
17. एंथोनी डी. स्मिथ, राष्ट्रवाद और आधुनिकतावाद: राष्ट्रों और राष्ट्रवाद के हालिया सिद्धांतों का एक आलोचनात्मक सर्वेक्षण। (लंदन: रूटलेज, 1998)।
18. कैरेन आर्मस्ट्रांग, फील्ड्स ऑफ ब्लड: रिलीजन एंड द हिस्ट्री ऑफ वायलेंस (न्यूयॉर्क: अल्फ्रेड ए. नोपफ, 2014)।
19. नलिन मेहता, द न्यू बीजेपी (नोएडा: वेस्टलैंड, 2022)।